अध्यापकों की भाषायी निष्ठुरता और समावेशी शिक्षा

शारदा कुमारी*

औपचारिक विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था में बच्चों के नामांकन की दर आसमान की उँचाइयों तक पहुँचती-सी दिख रही है। यह हम सभी के लिए खुशी की बात है। इसके साथ ही विद्यालय में नामांकित हुए बच्चे चौथे या पाँचवे वर्ष के भीतर ही किस गति से विद्यालय छोड़ रहे हैं यह दर भी किसी से छिपी नहीं है और यह हम सबके लिए चिंता की बात है। बच्चों के शाला त्याग की समस्याओं (ड्राप आऊट) को अक्सर विद्यालय के बाहर स्थित कारणों मे खोजने का चलन रहा है। यही वजह है कि इस विषय पर आयोजित तमाम अध्ययन उन आर्थिक-सामाजिक कारणों को ही केंद्र में रखते हैं जिनके सही होने की संभावना तो है लेकिन जिसे पूर्णत: सही नहीं माना जा सकता। जिन बच्चों के 'शाला त्याग' की समस्या से हम चिंताग्रस्त हैं दरअसल यह समस्या न तो मध्यवर्ग के बच्चों की है और न ही उच्च वर्ग के बच्चों की। यह समस्या उन इलाकों, समूहों और वर्गों के बच्चों की ज़्यादा है जिनकी पहली पीढ़ी शिक्षा में दस्तक दे रही है और इनमें भी वे बच्चे जिनके माता-पिता दूरदराज़ के ग्रामीण क्षेत्रों से विस्थापित होकर काम की तलाश में महानगरों में आ बसे हैं। स्कूल से बाहर आ गए या फिर सही मायनों में कहिए तो स्कूल से बाहर कर दिए गए बच्चों को मिलिए और बात करके देखिए तो पता चलेगा कि उनके शाला त्यागने की वजहें उनके बीच नहीं वरन् बहुत कुछ हम अध्यापकों के बीच में ही छिपी हैं। अध्यापकों के संबोधन के तरीके, समझाने, डाँटने-डपटने, सवाल करने के तरीके किस सीमा तक क्रूर हो सकते हैं यह जानकर ही सिहरन सी हो उठती है फिर भला रोज़ यातनामयी भाषा सुनकर बच्चे क्यों टिकेंगे विद्यालयों में।

प्रस्तुत लेख में अध्यापकों के उस भाषायी व्यवहार को सामने लाया गया है जो बच्चों से उनकी मानवीय गरिमा तो छीनता ही है साथ ही विद्यालय को एक यातनागृह के रूप में बदल देता है।

*वरिष्ठ प्रवक्ता, मंडल शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर.के.पुरम सैक्टर - 7, नयी दिल्ली – 110022

भारत में अध्यापकों की तैयारी से जुड़े कई पाठ्यक्रम हैं, जैसे– बी.एल.एड़., जे.बी.टी., ई.टी.ई., डी.एल. एड., बी.टी.टी., बी.एड. आदि। इन सभी पाठ्यक्रमों के एक विषय के अंतर्गत विद्यालय न जा पाने वाले बच्चों और प्रारंभिक शिक्षा पूरी किए बिना विद्यालय छोड़ देने वाले बच्चों पर गंभीर चर्चा की जाती है। जिन अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों में 'चर्चा' की संभावनाएँ शून्य होती हैं वहाँ कुंजीनुमा पुस्तकों के माध्यम से यह समझ बनाने की कोशिशें की जाती हैं कि आखिर बहुत से बच्चे विद्यालय क्यों नहीं जा पाते और बहुत से बच्चे प्रारंभिक शिक्षा पूरी किए बिना ही विद्यालय क्यों छोड़ देते हैं।

इस संदर्भ में चर्चा के माध्यम से कारण तलाशने की चेष्टाएँ हों या फिर कुंजीनुमा पुस्तकों से तयशुदा उत्तर ढूँढ़े जाएँ तो कुछ विशेष बिंदु सामने आते हैं, जैसे– गरीबी, बच्चों का कामकाजी होना, अभिभावकों में जागरूकता का अभाव, विद्यालय में बुनियादी सुविधाओं का अभाव, पाठ्यक्रम का बच्चों की ज़रूरतों से न जुड़ पाना, पठन-पाठन के अरुचिकर तरीके, विद्यालय का अनाकर्षक परिवेश आदि-आदि।

आश्चर्य की बात है कि अध्यापकों के भाषायी व्यवहार को कभी 'कारणों' की सूची में दर्ज नहीं किया गया न तो समावेशी विद्यालयी परिवेश की अवधारणा से पहले और न ही बाद में।

भारत 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य रूप से शिक्षा देने के लिए संवैधानिक रूप से प्रतिबद्ध है। फिर भी अनेक बच्चे इस सुविधा का लाभ नहीं उठा पाते तो इसकी एक बहुत बड़ी वजह अध्यापकों और उनके साथ विद्यालय में कार्यरत् अन्य सदस्यों का भाषायी व्यवहार है।

आगे बढ़ने से पहले मैं 'भाषायी व्यवहार' पर रोशनी डालना चाहूँगी–

भाषायी व्यवहार से तात्पर्य है– विद्यालय में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में बच्चों के साथ बात करने का तरीका व बोली, जैसे –

1. **बच्चों के प्रति संबोधन**– अध्यापक बच्चों को किस तरह से संबोधित करते हैं। हम इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि भिन्न-भिन्न सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक पृष्ठभूमि से आए बच्चों को अध्यापकों द्वारा 'किस तरह' से पुकारा जाता है।
2. **निर्देश आदेश की भाषा**– प्रात:कालीन सभा का आयोजन हो या फिर खेल परिसर में शारीरिक व्यायाम की कक्षा, अध्यापक बच्चों को तरह-तरह के निर्देश मौखिक रूप से देते ही रहते हैं। इन निर्देशों/आदेशों की शब्दावली व भाव विद्यार्थी विशेष के लिए अपना रूप बदलती है, यह बात गौर करने लायक है।
3. **कक्षा में पठन-पाठन**– भाषा की कक्षा हो या फिर विज्ञान, गणित, कला आदि की आम तौर पर कक्षाओं में सन्नाटे की संस्कृति को ही पोषित करने का चलन है, क्योंकि विद्यार्थियों के अनुभव सुनने-सुनाने की संभावनाएँ पैदा ही नहीं की जातीं और अध्यापक 'मूल्यांकन' को कक्षा शिक्षण का पर्याय मानकर श्यामपट्ट पर सवालों के तयशुदा उत्तर लिख देते हैं। पठन

की इस परंपरा के बावजूद कहीं-कहीं अध्यापक कुछ बोलते समझाते से नज़र आते हैं। उनके द्वारा बोले-लिखे जा रहे वाक्य, प्रयुक्त शब्दावली, उदाहरण कुछ इस तरह के होते हैं जो कक्षा के समावेशी परिवेश का अतिशय रूप से परिहास उड़ाते से नज़र आते हैं। या तो वे किसी विद्यार्थी विशेष को सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित करते हैं अथवा किन्हीं-किन्हीं की अस्मिता पर घातक प्रहार करते हैं। इस प्रहार से उपजी तिलमिलाहट विद्यार्थी को जबरन विद्यालयी परिधि के बाहर धकेलती है और समूचे समाज के प्रति आक्रोश का भाव उपजाती है या फिर दीन-हीन से भाव के साथ जीने को बाध्य करती है।

4. **प्रोत्साहन स्वरूप दी गई मौखिक/लिखित टिप्पणियाँ**– विद्यार्थियों को ज़रूरत हो या न हो पर अध्यापक अपना दायित्व समझते हैं कि वे विद्यार्थियों को उनके आचार-विचार, व्यवहार व पठन-पाठन संबंधी प्रगति के बारे में अपनी टिप्पणियों से अवगत कराते चलें। यहाँ भी उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा कक्षा के समावेशी परिवेश को छिन्न-भिन्न करती है।

5. **अभिभावक अध्यापक बैठकों में इस्तेमाल की जा रही भाषा**– एक अकादमिक सत्र में अभिभावकों को अपने बच्चों के अध्यापकों से औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से मिलने के कई अवसर सुलभ हैं। ग्रामीण परिवेश में इस तरह के अवसरों की सुलभता कम देखी गई है पर शहरी परिवेश में दिहाड़ी पर गुज़र-बसर करने वाले अभिभावक भी अपने बच्चों के बारे में बहुत कुछ जानने-सुनने की उत्सुकता लिए विद्यालय आते हैं। इन बैठकों में अध्यापकों की विस्फ़ोटक भाषा समावेशी नीति को शर्मिन्दा सी करती प्रतीत होती है।

6. **कल्याणकारी सेवाओं के वितरण के समय**– अपने विद्यार्थियों के साथ संवाद करने के कई मौकों के साथ-साथ अध्यापकों को एक और अवसर मिलता है कक्षा में बात करने का, वह यह कि आए दिन उन्हें तरह-तरह की कल्याणकारी योजनाओं के तहत नकद धनराशि, वर्दी, पुस्तकें, मिड-डे-मील बाँटना होता है। इस मौके का 'भाषायी व्यवहार' यानी कि अध्यापकों के संवाद इतने वीभत्स और घृणास्पद टिप्पणियों की बौछार करते हैं कि विद्यार्थियों के आगे बढ़ते हाथ संकोच और लज्जा से पीछे हो जाते हैं या फिर आँख की कोर से टपकते आँसुओं को पोंछने लगते हैं।

कुल मिलाकर 'भाषायी व्यवहार' से तात्पर्य अध्यापकों की मौखिक या लिखित टिप्पणियों, प्रतिक्रियाओं, संवाद से है जो उनके विद्यार्थियों के प्रति पूरे दिन की स्कूली कार्रवाई के दौरान प्रयुक्त होते हैं। इसमें उनका लहजा, शब्दावली, मुहावरे, लोकोक्ति सभी कुछ शामिल हैं। जिनका इस्तेमाल वे किसी भी विद्यार्थी के लिए किसी भी स्थिति में बेखटक करते चलते हैं। इस बात का लेशमात्र भी खयाल नहीं करते कि समावेशी कक्षा उनसे उनके भाषायी व्यवहार के संदर्भ में भी सजगता और संवेदनशीलता की माँग करती है।

1990 के दशक में सलमान्का में हुई विश्वस्तरीय बैठक में समावेशन की नीति को स्वीकृति मिली जिसने शिक्षा नीति को भी प्रभावित किया और अनुशंसा की कि समूचे देश के लिए एक लचीली व्यापक और संतुलित पाठ्यचर्या बने जो प्रत्येक बच्चे की ज़रूरतों को पूरा कर सके। यानि कि जैंडर, नस्ल, सामाजिक-आर्थिक समूह, असक्षमता या सक्षमता के आधार पर किसी भी भेदभाव के बिना सभी विद्यार्थियों के लिए समावेशी पाठ्यचर्या (इन्क्लूसिव) का प्रावधान।

आमतौर पर जब 'समावेशी नीति/परिवेश या पाठ्यचर्या' की बात आती है तो ध्यान या समझ शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण बच्चों (दृष्टिबाधित, श्रवण व वाक् क्षमता बाधित आदि) की ओर जाता है और विद्यालय परिसर व कक्षा में रैम्प बनाना जैसे प्रावधान जुटाकर यह मान लिया जाता है कि समावेशी परिवेश तैयार कर लिया गया है।

यहाँ पर ध्यान देने वाली बात यह है कि समावेशी शिक्षा नीति सिर्फ़ 'विकलांग' को शामिल करने तक ही सीमित नहीं है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि समावेशी शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के लिए सिर्फ़ भौतिक परिवेश में बदलाव पर्याप्त नहीं है बल्कि शिक्षण व्यवहारों, पाठ्यचर्या की सामग्री, मूल्यांकन प्रक्रिया, तकनीकी का इस्तेमाल सभी में बदलाव की ज़रूरत है विशेषकर अध्यापकों के दृष्टिकोण और उनके भाषायी व्यवहार में बहुत व्यापक स्तर पर सकारात्मक बदलाव की ज़रूरत है।

समावेशी विद्यालयी परिवेश में शामिल हैं–

1. लड़की एवं लड़का
2. किसी भी भौगोलिक पृष्ठभूमि के बच्चे
3. किसी भी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चे
4. किसी भी जाति, नस्ल, वर्ग या रंग के बच्चे
5. भिन्न-भिन्न भाषायी पृष्ठभूमि के बच्चे
6. कामकाजी, गैर-कामकाजी बच्चे
7. शारीरिक दृष्टि से चुनौतीपूर्ण बच्चे (किसी भी प्रकार की विकलांगता वाले बच्चे),
8. भिन्न-भिन्न तरीकों से सीखने वाले बच्चे

समावेशी विद्यालयी परिवेश से अपेक्षा है कि–

- वह सभी बच्चों की शारीरिक, भावात्मक और सीखने-सिखाने संबंधी ज़रूरतों का ध्यान रखे।
- वह सीखने वालों की विविधता को स्वीकार करे और मानवीय गरिमा का एहसास दिलाए।
- वह सभी बच्चों की सीमाओं कमियों की पहचान अवश्य करे पर उनका बखान करने की जगह उनकी विशेषताओं व क्षमताओं का विकास करने से जुड़ा माहौल भी पैदा करे।
- बच्चों की विशिष्टताओं की पहचान करके उनके अनुसार अपने व्यवहार, सीखने-सिखाने की सामग्री व पद्धतियों में उचित बदलाव करे।

कहने का तात्पर्य यह है कि समावेशी नीति सिर्फ़ विद्यालय के भौतिक परिवेश में बदलाव की माँग नहीं करती अपितु अध्यापकों के दृष्टिकोण में भी सौहार्दता एवं निष्पक्षता की माँग करती है।

दिनांक 10 अक्तूबर से 24 दिसंबर 2014 तक दिल्ली सरकार के शिक्षा निदेशालय के अंतर्गत आने वाले तीन विद्यालयों में कक्षा शिक्षण एवं विद्यालय में चल रही अन्य गतिविधियों के दौरान अध्यापकों के भाषायी व्यवहार का अवलोकन किया गया और पाया गया कि उनके बोलने के तरीके एवं भाव समावेशी शिक्षा नीति के विरुद्ध जाते हैं।

विद्यालयों के नाम इस प्रकार हैं–

- सर्वोदय कन्या विद्यालय नं. 1, राजनगर, नयी दिल्ली
- राजकीय सहशिक्षा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय सै. 1 द्वारका, नयी दिल्ली
- शहीद कैप्टन सुमित राय सर्वोदय कन्या विद्यालय, पालम एन्कलेव, नयी दिल्ली

(अध्यापक-अध्यापिकाओं के नाम एवं विषय गोपनीय रखे जा रहे हैं जैसा कि अवलोकन से पहले लिखित रूप में कहा गया था।)

अध्यापक-अध्यापिकाओं की टिप्पणियाँ–

- "कक्षा में दृष्टिबाधित विद्यार्थी को संबोधित करते हुए – 'ओ सूरदास के वशंज, तुझे समझ आई कि नहीं आई। बाकी छात्र समझें या न समझें, तेरा समझना ज़रूरी है। नहीं तो तेरा बाप सीधे आयोग में चिट्ठी डाल देगा। फिर देते फिरो उनके जवाब। बोल, समझ गया ना। कर लेगा इन सवालों को हल।"
- "अबे, माँ-बाप को समझा कि पढ़ने-लिखने की जगह कोई गाना-बजाना सिखाएँ तुझे। अब तेरे लिए मैं टैक्टाइल ग्लोब का इंतज़ाम करूँ। मैंने आज तक न ग्लोब देखा तेरे लिए कहाँ से इश्यू कराऊँ।"
- "इक त अन्नी (अंधी) उत्ते मधरी जयि। पर जबान त देखो रुकदी नयि लप लप लप करि जावे। तुझे तो कैटेगरी की नौकरी मिल जाएगी तू पढ़ या न पढ़। कचर-कचर बोलकर बाकी को क्यों बरबाद कर रही है।"
- "ओपन स्कूल से दे लेती न पेपर। ज़्यादा ही शौक चर्रा रहा है घर से निकलने का। तू घर बैठ या स्कूल बैठ तेरे लिए तो सब बराबर है न। खामखा हमारा काम बढ़ा दिया।"
- "अरे! ..... जी। इन्हें कुछ मत कहना। इन्हें तो सर माथे पर बिठा कर रखो। बड़ी तगड़ी यूनियन है इन फूटी आँख वालों की। सस्पैंशन से कम पर बात नहीं बनेगी।"
- "असली में अंधा है या फिर फ्यूचर में नौकरी-शौकरी के जुगाड़ की तैयारी में अंधे होने का नाटक कर रहा है। बता! तुझे कैसे पता चला कि मैं क्लास में आ गया हूँ। मुँह तो मैंने खोला नहीं। ना ही किसी और ने बोला। चल जा बैठ अपनी सीट पर जाके। ड्रामा कंपनी कहीं का।"

कक्षा में सवर्ण विद्यार्थी के द्वारा सही उत्तर न दिए जाने पर–

- "और कर बेटा दोस्ती इन चूढ़ियों से। इनके संग रहेगी तो खुद का सत्यानाश ही करेगी। वोही फ़िल्मों-शिल्मों., फ़ैशन-टैशन की बातें करेगी। दिखा ज़रा अपना हाथ दिखा? ये नाखूनों पे क्या पोत रखा है। ऐसा लग रहा है कि किसी को नोच कर आई है। इन चोहियों से यही सब सीखेगी।"

- "ओ बामन की औलाद! पुरोताही के दिन लद गए। वे दिन गए जब तुम्हारे बाप दादों ने उलटे-सीधे श्लोक पढ़कर खूब कमाया। अब न चलेगी तुम्हारी दादागिरी बेटे। अब ध्यान लगा ले पढ़ने में। जो इस सवाल का जवाब न दिया तो बस देख ले ....।"
- "ओहहो! नाम के आगे त्रिवेदी.....। और काम? काम एकदम अंडा। क्यों बे! पढ़ने में मन नहीं लगता तो जा, जा के घास छील मैदान में। चिकना कहीं का।"
- "ऐ अलबेलियों! बस हँसी ठठ्ठा करी रहना। अरे आगे आने वाला समय बड़ा खतरनाक है। जिनके साथ अठखेलियाँ कर रही हो न ये ही तुम्हारी नौकरियाँ निगल जाएँगी। पढ़ ले, पढ़ ले। चल बैठ, (दूसरी लड़की से) हाँ तू बता। बताएगी या यूँ ही तुझको इनकी चाट लगी है।"

विद्यार्थी द्वारा गृहकार्य न करके लाने पर–

- "क्यों री छप्पनछुरी। क्यों न किए ये सवाल? रात को क्या तू भी माँ के साथ गई थी धंधे पर।"
- "मालूम था मुझे कि तुम्हारी कॉपी आज जमा न होगी। हर बार की तरह एक ही कहानी। बाप माँ को पीटेगा। लालटेन तोड़ेगा और तुम सब भाई बहन खटिया के नीचे दुबकोगे। मुझे तुम्हारी इन कहानियों से मतलब नहीं। मुझे तो काम से मतलब है। तेरे को मैंने कुँजी भी दिला रखी है ना।"
- "अबे ओ नशेड़ी की औलाद! बाप के साथ तूने भी चढ़ा ली थी क्या? ये किस सबजैक्ट की कॉपी दे गया मुझे। उल्लू बना रिया है। काम तो किया नहीं होगा। सोचा कोई सी भी कॉपी जमा करा दूँ क्या पता चलेगा। खूब दिमाग चलता है, मुस्टंडा कहीं का। ऐसा सूतूँगा कि ....।"
- "हु हु ..., तो मैडम जी ने कल बर्थडे मनाया था बर्थडे हैं न इसलिए काम नहीं कर सकीं। 'घर में दाने नहीं अम्माँ चक्की पीसने चलीं'। बड़े लोगों की और तो कोई नकल कर नहीं सके तो सोचा बर्थडे ही मना लें। बहुत बड़े बन गए न। .... कितने ही बर्थडे मना लो रहोगे तो वही ......"
- "इधर आ कसाई की औलाद! तुझे तो मैं बताता हूँ कि काम कैसे नहीं करके लाते।"

खेल के मैदान में एक समूह में खेल रहे कुछ बच्चों में से एक बच्चे को संबोधित करते हुए–

- "....चिमट ले, चिमट ले। बेटे करम से बामन बनते हैं। ऐसे चिमट-चिमट के कुछ ना होने का जमूरे।"
- "ओए आबनूसी! माँ ने क्या बैंगनों का टोकरा गटक लिया था तुझे पैदा करने से पहले। जा सारे डंडे फिजिकल रूम में रख आ। एक भी कम न हो। सारे मेरे नाम पर चढ़ रखे हैं।"
- "देखो तो कलुवी को। कैसे लपक-लपक कर भागती है मरी। पढ़ने में कोरी फिसड्डी यहाँ कैसी बिजली की तरह दौड़ती है। चल जैसी भी है स्कूल के लिए शील्ड तो ले ही आती है।"

एक विद्यार्थी द्वारा मँहगे जूते पहने जाने पर खेल अध्यापक की टिप्पणी थी–

- "अक्खें...., वाह क्या शानदार जूते हैं। कहाँ हाथ साफ़ करके बेटा आया तू? बाप मरा अँधेरे में और बेटा पावर हाउस।"

प्रात:कालीन सभा में सभी बच्चों के गणवेश (वरदी) की जाँच करते हुए–

- "क्यों री, स्कूल की सलवार सफ़ेद रंग की है या लाल रंग की। किसलिए पहनी है यह लाल रंग की सलवार? बंदरिया कहीं की।"
- "ये बालों में किस तरह के फुँदने लटका रखे हैं? शक्ल देखी है कालीमाई अपनी। कुछ ज़्यादा सुंदरता बढ़ गई क्या? ख़बरदार जो आगे से कोई फ़ैशन करके आयी स्कूल में। ये स्कूल है नचनियों का जमावड़ा नहीं। समझी।"
- "ऐ मुसल्लटे की औलाद! नहाने धोने को पानी नहीं क्या घर में। चले आते हैं बदबू मारते हुए।"

दो विद्यार्थियों की आपसी छीना झपटी व हाथा पाई होने पर बीच बचाव करते हुए एक विद्यार्थी को–

- "मुर्गमुसल्लम डकार-डकार के जी नहीं भरा ओ तालिबानी। चल पीछे हट। स्कूल है या तेरे बाप की दूकान। ऐसा रैपटा खीचूँगा कि दोनों कान सुन्न पड़ जाएँगें।"

कक्षा में समास विग्रह समझाते हुए–

- "लंबोदर– लंबा है उदर जिसका यानि कि ... हाँ बेटे तू बता ज़रा ज़्यादा ही मचल रहा है। (विद्यार्थी द्वारा गलत उत्तर देने पर) और तुम दढ़िलयों से उम्मीद भी क्या कर सकते हैं। मरे अपने तो पाँच वक्त की नमाज़ी पक्के और गणेश जी का नाम लेते भी सकपकाए ज़ुबान इनकी।"

एक विद्यार्थी के हफ्ते भर के अवकाश के बाद आने पर–

- "क्यों जी बेटा रामसहाय, इतने दिनों बाद कैसे आए? आज तो झंडिया लगाई जाएँ। हैं भई। आखिर आप जो पधारे हैं कक्षा में। कहाँ मर गए थे बाई द वे।"

अंग्रेज़ी की कक्षा में एक विद्यार्थी का पूरी तरह से अंग्रेज़ी में बात करने के प्रयास पर–

- "आइयो ... क्या बात है डंकन साहब। अंग्रेज़ी में शताब्दी दौड़ा रहा है। बालों का भी खूब स्टाइल बना रक्खा हैं चल बैठ जा। ज़्यादा अंग्रेज़ी मत झाड़। मालूम है बाप ने ट्यूशन लगा रखी है।"

विद्यालय की भिन्न-भिन्न स्थितियों में अध्यापकों के ऐसे बहुत से संवाद दर्ज किए जो समावेशी नीति का तो उपहास उड़ाते ही थे साथ ही विद्यार्थियों की मानवीय गरिमा और उनकी अस्मिता को भी चोट पहुँचाते थे।

स्पष्ट है कि अध्यापकों की भाषा सभी विद्यार्थियों से बराबरी का व्यवहार नहीं करती। ऐसे में समावेशी परिवेश की अपेक्षा करना तर्कसंगत नहीं है। सबसे पहले अध्यापकों को सचेत किया जाए कि वे अपनी भाषा शैली व शब्दों के चयन के प्रति सजगता बरतें।

इसके लिए विद्यालयी स्तर पर कक्षा 6, 7 व 8 को पढ़ाने वाले सभी अध्यापकों (कुल सत्तरह) के साथ संवाद हुआ उनसे प्रश्न पूछे गए–

- क्या आपने कभी गौर किया है कि आप अपने विद्यार्थियों को किस तरह से संबोधित करते हैं?

- क्या आपके लिए संभव है कि आप अपनी जेब या बटुए आदि में टेपरिकॉर्डर रखें और अपने संवाद रिकॉर्ड करें या किसी और तकनीक/पद्धति का इस्तेमाल करें?
- क्या आपने कभी गौर किया है कि आपका भाषायी व्यवहार विद्यार्थियों की अस्मिता को चोट पहुँचाता है?
- क्या आप समझते हैं कि विद्यार्थी आपसे विशिष्ट भाषा की अपेक्षा रखते हैं?

प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान अध्यापकों से उनके भाषायी व्यवहार की जब बात की गई तो सभी के भीतर एक तरह से चौंकने का भाव था। चौंकने का भाव इसलिए नहीं था कि वे ऐसी-वैसी भाषा बोलते हैं, उन्हें हैरानी इस बात पर थी कि 'इन बच्चों' को भी हमारी बात बुरी लग सकती है। जैसा कि एक अध्यापक ने कहा, "भई हमारे अपने बच्चों की बात तो समझ में आती हैं उन्हें तो 'तू' कह कर भी बोल दो तो तन जावेंगे कि गाली क्यों देते हो। पर इन बच्चों को भी खराब लग सकता है ये तो कोई बात नहीं हुई।"

उनकी इस धारणा के पीछे मंतव्य यह था कि ये बच्चे जिस परिवेश में रहते हैं वहाँ ऐसी ही भाषा बोली जाती है। दुतकार भरी भाषा इनके जीवन का हिस्सा है। "इन्हें क्या मालूम कि प्यार या सम्मान भरी भाषा क्या होती है।" अधिकतर पुरुष अध्यापकों का यही मानना था। कुछ महिला अध्यापक ने स्वीकार किया कि अब अपने ही संवादों पर गौर करने से हमें लग रहा है कि "हम बहुत ज़ुल्म कर रहे थे।" पर उन्होंने यह भी हताशा ज़ाहिर की कि हम अनावश्यक कामों से इतने पस्त रहते हैं और ठूँस-ठूँस कर भरी कक्षाओं में जाने को बाध्य होते हैं कि अपना आपा खो बैठते हैं और तल्खी भरी भाषा बोलने को मज़बूर हो जाते हैं। एक पुरुष अध्यापक ने कहा कि वह रोज़ सवेरे पढ़ाने के इरादे से विद्यालय आता है पर पहले दो-तीन सत्र यूँ ही बेकार के कामों में निकल जाते हैं फिर बाद के सत्रों में दो-तीन कक्षाएँ इकट्ठी सर पर बैठा दी जाती हैं। अपना सारा रोष वह अटपटी बातें कहकर उतारता है और संतुष्टि अनुभव करता है।

कुछ अध्यापकों को लगा कि वे कुछ भी गलत नहीं कर रहे। ऐसी बातें तो हमारे समाज में प्रचलन में हैं। हर दूसरे-तीसरे घर में ऐसे ही बोला जाता है। उनके अनुसार बच्चों को तो इस बात का भान तक नहीं होता कि उन्हें डाँटा भी जा रहा है।

इस पत्र (अवलोकनों) के आधार पर उपशिक्षा निदेशक से अनुशंसा की गई कि किसी न किसी रूप में अध्यापकों तक यह बात पहुँचायी जाए कि वे अपनी भाषा के प्रति सजगता का भाव रखें और विद्यालय के समावेशी परिवेश को बनाए रखने में अपना योगदान दें।